...प्त जीवन परिचय

...री सत्यपति परिव्राजक

दर्शन योग महाविद्यालय
आर्य वन, रोजड़, (गुजरात)
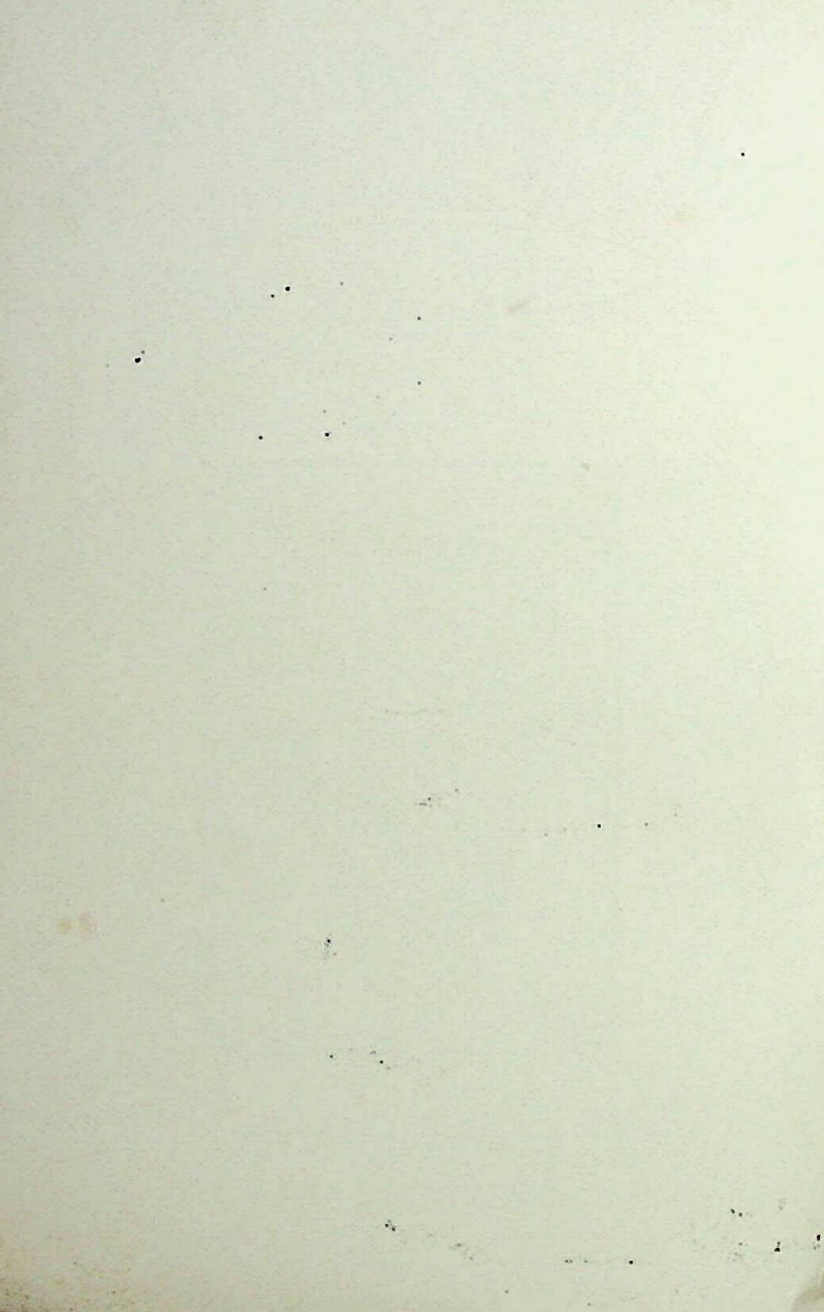
मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय
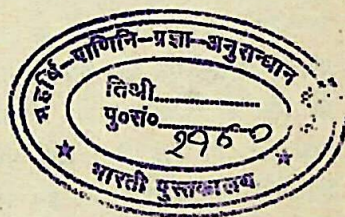
स्वामी सत्यपति परिव्राजक

दर्शन योग महाविद्यालय,
आर्य वन विकास क्षेत्र, रोज़ड़,
पत्रालय-सागपुर, जिला-साबरकांठा,
(गुजरात) पिन-३८३३०७

प्रकाशकीय

चाहे किसी भी मत-पंथ, देश, प्रान्त में क्यों न उत्पन्न हुआ हो, एक सुसंस्कारी जावात्मा, तीव्र इच्छा, लक्ष्य व मार्ग का निर्धारण, साधकों का संग्रह व बाधकों का परित्याग, प्रबल पुरुषार्थ एवं घोर तपस्या के माध्यम से, सामान्य जीवन के स्तर से ऊपर उठकर जीवन के उच्चतम शिखर को प्राप्त कर ही लेता है। यही प्रतीति योगनिष्ठ पूज्य स्वामी सत्यपति जी महाराज के इस संक्षिप्त जीवन में दृष्टि गोचर होती है।

ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा से, आज ईश्वर को विषय बनाकर पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, लिखने-लिखाने वालों की संख्या करोड़ों नहीं बल्कि अरबों में भी संभव है, किन्तु उस दिव्य स्वरूप ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता के भण्डार दयामय प्रभु को समाधि के माध्यम से अनुभूति का विषय बनाने वाले व्यक्ति तो संसार में विरले ही होंगे। एक ऐसे ही सन्त के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करके, अन्य लोग भी परमपिता, सच्चिदानन्द परमेश्वर की ओर आकर्षित हो सकें, इसी भावना के साथ यह जीवन चरित्र प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक का प्रकाशन एक सज्जन के सहयोग से हुआ है। हम उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

दर्शन योग महाविद्यालय,

संस्करण- द्वितीय (जून १९९२) आर्यवन, रोजड़.

भूमिका

अनेक सज्जनों के कहने पर और मेरी दृष्टि में भी उचित होने से मैंने सर्वहितार्थ संक्षेप से अपना जीवन चरित्र लिखा है। जीवनचरित्र लिखने से अनेक प्रयोजनों की सिद्धि होती है। जैसे—

१. वास्तविक इतिहास का परिज्ञान होता है और इतिहास की रक्षा भी होती है।

२. व्यक्ति के जीवन में जो विशेष गुण होते हैं उनका परिज्ञान होने से अनेक लोग उन गुणों का ग्रहण कर अपने जीवन को उत्तम बनाते हैं और जो दोष होते हैं उनसे स्वयं को दूर रखने में समर्थ हो जाते हैं।

३. 'अमुक व्यक्ति ने उत्तम गुणों को किन उपायों से प्राप्त किया और जो दोष हैं उनका क्या कारण है', इसका ज्ञान होता है।

४. सत्य इतिहास होने पर कोई मिथ्या इतिहास का प्रचार-प्रसार नहीं कर सकता। जैसा कि आजकल के अनेक लोगों ने 'आर्यावर्त्त' (भारत) देश के इतिहास को नितान्त विपरीत रूप में उपस्थित कर दिया है। वे कहते हैं कि 'आर्य लोग बाहर से आये हैं' इत्यादि। प्रामाणिक इतिहास की विद्यमानता में लोगों को उस पर संशय नहीं होता। संशय युक्त इतिहास पर व्यक्ति का विश्वास नहीं होता और विश्वास न होने पर वह उसके अनुसार आचरण भी नहीं करता।

५. सत्यासत्य के वास्तविक परिज्ञान में इतिहास एक 'प्रमाण' माना जाता है।

जब व्यक्ति सांसारिक स्थिति में होता है तब और जब विवेक-वैराग्य दृढ़ हो जाता है तब उसके समक्ष अपने जीवन-चरित्र के लिखने में कोई बाधा नहीं आती। किन्तु जब व्यक्ति उच्च विवेक वैराग्य के समीप पहुंचता वा उसे प्राप्त कर लेता है और वैराग्य की स्थिति दृढ़ नहीं होती उस समय अपना जीवन चरित्र लिखने में बाधा उपस्थित होती है। अतः उसे ऐसी अवस्था में नहीं लिखना चाहिए।

मैं अपने इस जीवन चरित्र में सर्वहितार्थ उन्हीं बातों को लिखूँगा जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्य प्रतीत होती हैं। क्योंकि सत्यासत्य को जानना-जनाना तथा सत्य को ग्रहण करना-करवाना और असत्य को छोड़ना छुड़वाना ही मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है। सत्याचरण से ही लौकिक सुख और मोक्षानन्द की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं। जो लोग 'असत्य आचरण से लाभ और सत्याचरण से हानि समझते हैं', उनकी यह मान्यता मेरे लगभग साढ़े चालीस वर्ष के अनुभव और वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से विपरीत है।

इस जीवनचरित्र में जिस बात को प्रमाणों से सत्य समझा है उसको सत्य और जिसको असत्य समझा है उसको असत्य रूप में लिखा गया है। पुनरपि अल्पज्ञता के कारण यदि कोई बात असत्य लिखी गई हो तो उसको प्रमाणों से असत्य सिद्ध होने पर छोड़ दिया जायेगा।

इसको पढ़कर सज्जन लोग गुणों को ग्रहण करेंगे और दोषों को छोड़ देवेंगे।

— स्वामी सत्यपति

मेरा संक्षिप्त जीवन चरित्र

जन्म तथा परिवार : मेरा जन्म हरियाणा प्रान्त के रोहतक जिले के फरमाना (महम) ग्राम में (माता-पिताजी के बताए अनुसार) विक्रम संवत् १९८४ (उन्नीस सौ चौरासी) के लगभग मध्य में हुआ। मेरी माताजी का नाम दाखां और पिताजी का नाम मोलड़ था। माता-पिताजी इस्लाम-मत के मानने वाले थे। परन्तु इस्लाम-मत के विषय में उन्हें कोई विशेष परिज्ञान नहीं था। जैसा दूसरे इस्लाम-मत के मानने वालों से सुनते थे वैसा ही हमको भी बतलाते थे। पठित न होने से 'कुरआन में क्या लिखा है' यह उनको कुछ भी विदित नहीं था। हमको उन्होंने बतलाया कि अल्लाह का नाम लेना चाहिए और अल्लाह आसमान पर रहता है। हम इन सब बातों को हितप्रद मान कर वैसा ही करते थे और इस्लाम मत को सर्वोपरि मानते थे। घर पर कृषि और वस्त्र धोने का कार्य होता था। स्वयं की भूमि नहीं थी किन्तु दूसरों की भूमि में ही कृषि कार्य करते थे। जिस परिवार में मेरा जन्म हुआ वह धोबी वर्ग कहाता है।

बाल्यावस्था एवं संगप्रभाव : बाल्यावस्था में मुझे विद्याध्ययन का अवसर नहीं मिला। उस समय भारत में अंग्रेजों का राज्य था। उन्होंने भारतीयों को विद्या पढ़ाने का विशेष उपाय नहीं किया। मैं विद्याध्ययन के उद्देश्य से किसी भी आधुनिक विद्यालय में नियम-पूर्वक एक दिन भी नहीं गया। मेरे विद्याध्ययन का मुख्य काल पशुओं को चराने, खेती करने और कुसंग में व्यतीत हो गया। अपवित्र लोगों के संग का और अज्ञान-ग्रस्त समाज का मेरे जीवन

पर अत्यन्त कुप्रभाव पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे जीवन में अनेक दोष आ गए। और मैं उन भयंकर दोषों को ही गुण मानने लग गया। जिस कार्य को मैं अच्छा समझ लेता था उसको संपूर्ण बल से ऊँचे स्तर पर करने का प्रयत्न करता था। किन्तु जिन कार्यों को मैं अच्छा समझता था उनमें कुछ अच्छे होते थे और कुछ बुरे होते थे। अच्छों में शारीरिक बल बढ़ाना आदि और बुरों में धूम्रपानादि।

प्रारम्भिक अक्षराभ्यास : लगभग १९ वर्ष की अवस्था में अनेक लोगों से पूछ-पूछकर मैंने आर्यभाषा के अक्षरों को सीखा और पुनः भूमि में लिख-लिख कर लिखने का अभ्यास किया और पुनः शब्दों को मिला-मिलाकर पढ़ने का अभ्यास किया।

हिंसक घटनाओं का प्रभाव : विक्रम संवत् २००४ (सन् १९४७ ई०) में भारत का विभाजन हुआ। उस समय चारों ओर हिन्दुओं और मुसलमानें के झगड़े तथा भयंकर मारकाट चल रही थी। उस समय मेरे मन में यह भय सतत बना रहता था कि पता नहीं मुझे और मेरे समस्त परिवार को कब मार दिया जाएगा। इस भयंकर अवस्था को देखकर मृत्यु से बचने के लिए ग्राम के सभी इस्लाम-मत के मानने वालों ने और हमारे सम्पूर्ण परिवार ने हिन्दु-मत को स्वीकार कर लिया।

मृत्यु-भय से उत्पन्न प्रश्न : भारत-विभाजन-काल की इन हिंसक घटनाओं ने मेरे मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न कर दी कि "यह जीवन क्या है और मृत्यु क्या है ? क्या यह शरीर सदा रहेगा अथवा इसका विनाश होगा ? इस शरीर

को सदा बनाए रखने के लिए संसार में कोई उपाय है वा नहीं ? क्या मैं सदा जीवित रहना चाहता हूँ वा मरना चाहता हूँ ? ये भूमि आदि लोक क्या सदा से विद्यमान हैं अथवा कभी इनकी उत्पत्ति हुई है ? क्या ये अनन्त काल तक जैसे के तैसे बने रहेंगे अथवा कभी इनका विनाश होगा ? यदि विनाश होगा तो पुनः ये किस अवस्था में चले जायेंगे ? क्या इन सबका अभाव हो जाएगा, सूक्ष्मावस्था हो जाएगी ? धन, सम्पत्ति, शरीर, भूमि आदि का स्वामी कौन है ?" इत्यादि इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढना ही मेरा मुख्य कार्य रह गया था; शेष सब कार्य गौण हो गए थे । और पाँचों इन्द्रियों के भोगों की इच्छा स्थूल रूप से समाप्त हो गई थी । उस समय इन प्रश्नों का उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति मुझे उपलब्ध नहीं हुआ । मैं स्वयं ही इन प्रश्नों को उठाता था और स्वयं ही उत्तर ढूंढता था ।

प्रश्नों के समाधान की पद्धति **:** प्रश्नों को उठाने और उत्तर देने की पद्धति इस प्रकार थी—

प्रश्न : क्या मैं सदा जीवित रहना चाहता हूँ वा कभी मरना चाहता हूँ ?

उत्तर : मैं सदा जीवित रहना चाहता हूँ, मरना कभी भी नहीं चाहता ।

प्रश्न : क्या इस जीवन को सदा बनाए रखा जा सकता है ? और यदि सदा बनाए रखा जा सकता है तो कौन से उपाय हैं ?

उत्तर : इस जीवन को सदा सुरक्षित रखने का कोई भी उपाय संसार में उपलब्ध नहीं हो रहा है । यदि कोई ऐसा उपाय उपलब्ध होता तो सदा जीवित रहने के इच्छुक लोग

उस उपाय के प्रयोग से सदा जीवित रहते, मरते कभी नहीं ।

परन्तु सदा जीने की इच्छा रखने वाले लोग भी मरते देखे जाते हैं । माता-पिता अपनी सन्तानों सम्बन्धियों को कभी भी मरने नहीं देना चाहते । परन्तु उनके न चाहते हुए और समस्त उपायों का प्रयोग करने पर भी मृत्यु को नहीं रोक पा रहे हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि इस जीवन को सदा सुरक्षित रखने का संसार में कोई उपाय नहीं है । जैसे अनेक लोग जो सदा जीवित रहना चाहते थे किन्तु वे जीवित न रह सके, वैसे ही मैं भी सदा जीवित रहने की इच्छा रखता हुआ भी अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होऊँगा । जब मैं इस निर्णय पर पहुँचता था कि मेरी मृत्यु अवश्य ही होगी तब मुझे भयंकर डर लगता था, और इस मृत्यु के विचार को छोड़ने की इच्छा होती थी । परन्तु उस मृत्यु के विचार के साथ-साथ यह प्रश्न भी उठता था कि क्या मृत्यु के विचार को छोड़ देने से मृत्यु मुझे छोड़ देगी ? इसका उत्तर यह मिलता था कि मैं यदि मृत्यु के विचार को छोड़ भी दूं तो भी मृत्यु मुझे कभी नहीं छोड़ेगी । इस लम्बे संवाद के पश्चात् यह निर्णय हो गया कि मेरी मृत्यु अवश्य ही होगी ।

पुनः प्रश्न उठा कि क्या सभी मनुष्यादि के शरीरों का विनाश होगा ? इसका उत्तर मिला कि हाँ सभी शरीरों का विनाश अवश्य ही होगा । पुनःप्रश्न उभरा कि यह तो ठीक है कि इस वर्तमान काल में जो शरीर है उनका विनाश होगा, परन्तु आगे उनकी सन्तति और उस सन्तति के पश्चात् अगली सन्तति होती रहने से मनुष्यादि के शरीर सदा बने रहेंगे ? इसका उत्तर मिला कि एक अवस्था ऐसी अवश्य

आएगी कि ज़िसमें समस्त शरीरों का अन्त हो जाएगा। इसी प्रकार का एक प्रश्न मनुष्यादि के शरीरों की उत्पत्ति के विषय में उत्पन्न हुआ कि क्या ये मनुष्यादि के शरीर सदा से बनते-बिगड़ते हुए चले आ रहे हैं अथवा इनका कभी प्रारम्भ हुआ है ? इसका उत्तर यह मिलता कि ये मनुष्यादि शरीर सदा से बनते हुए नहीं चले आ रहे हैं किन्तु एक अवस्था ऐसी भी थी कि जिस समय कोई भी शरीर नहीं था।

मनुष्यादि के शरीरों की अनित्यता सिद्ध होने के पश्चात् एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या इन भूमि, चन्द्रादि का भी कभी विनाश होगा और क्या कभी इनकी भी उत्पत्ति हुई है ? इसका उत्तर यह मिला कि भूमि आदि का विनाश भी निश्चितरूपेण होगा और इनकी उत्पत्ति भी अवश्य ही हुई है। पुनः प्रश्न उठा कि भूमि आदि के विनाश के पश्चात् क्या इन सबका अभाव हो जाता है अथवा ये सूक्ष्मावस्था में [भावरूप में] रहते हैं ? इसका उत्तर मिला कि ये सूक्ष्मावस्था में [भावात्मक रूप में] रहते हैं, अभाव नहीं होता कारण कि कोई भी वस्तु सूक्ष्म होती हुई चाहे किसी भी अवस्था में चली जाए परन्तु वह अभावात्मक नहीं हो सकती। इसी प्रकार जब भूमि आदि की उत्पत्ति नहीं हुई थी तब भी ये सूक्ष्मरूप में सत्तात्मक थे। इसके पश्चात् यह विचार उभरा कि जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तब क्या अवस्था होती है ? इसका उत्तर मिला कि वह शरीर सदा के लिए समाप्त हो जाता है ? पुनः वही शरीर कभी भी उत्पन्न नहीं होता और 'मैं और मेरा' का व्यवहार समाप्त हो जाता है।

पुन: एक प्रश्न उभरा कि सामान्य मनुष्य प्राय: यह कहते हैं— 'यह धन मेरा है; यह सम्पत्ति मेरी है; यह भूमि मेरी है।' परन्तु मृत्यु के पश्चात् उस मेरा कहने वाले व्यक्ति का कुछ भी नहीं रहता तो फिर ये धनादि सभी वस्तुयें किसकी हैं ? इसका उत्तर यह मिला कि ये सभी वस्तुयें परमात्मा की हैं किसी मनुष्य की नहीं । जो मनुष्य इन सांसारिक वस्तुओं का स्वामी स्वयं को मानता है परमात्मा को नहीं, उसकी यह मान्यता असत्य है ।

विवेक, वैराग्य, समाधि की प्राप्ति : इस समस्त विचार का सार यह निकला कि सम्पूर्ण संसार को बनाने, चलाने और बिगाड़ने वाला परमात्मा है । उसी की ये शरीर आदि वस्तुयें है अन्य किसी की नहीं । इन विचारों के पश्चात् संसार नाशवान् दिखाई देने लगा और बौद्धिक स्तर पर प्रलयवत् अवस्था बनी दिखाई देने लगी । मैं इस अवस्था में बन्धन-रहित स्थिति का अनुभव करता था और इसके भङ्ग हो जाने पर पुन: क्लेशों की उपस्थिति हो जाती थी । इसका परिणाम यह निकला कि मेरा 'स्व-स्वामि-संबन्ध' और मिथ्या-अभिमान समाप्त हो गया । और 'सभी वस्तुओं का स्वामी परमात्मा है' यह निर्णय हो गया ।

पूर्व जन्म में उपार्जित उत्तम संस्कारों के कारण तथा तात्कालिक मृत्यु की घटनाओं के श्रवण से और महान् परिश्रम तथा ईश्वर की सहायता से मुझे विवेक, वैराग्य और समाधि की प्राप्ति हुई । इस अवस्था को प्राप्त करने में ६ मास से अधिक समय नहीं लगा । नित्य और अनित्य का वास्तविक ज्ञान और मन, वचन कर्म से ईश्वर को ही सर्वस्व का स्वामी मानना तथा ईश्वर को ही सर्व प्रिय वस्तु मानकरे

उसी की उपासना करना' ये समाधि की प्राप्ति में मुख्य उपाय थे। इस समय मैं 'परमात्मा' नाम का जप किया करता था और 'अल्लाह' नाम को छोड़ दिया था।

ईश्वरोपासनामय जीवन : इस विशेष अवस्था की प्राप्ति के पश्चात् जो भी कृषि आदि कार्य करता था उसको छोड़ दिया था और संपूर्ण समय ईश्वरोपासना में लगाता था। जब मैं ईश्वरोपासना को छोड़ता था तो मुझे क्लेश संतप्त करते थे। क्लेशों से बचने के लिए मैं ईश्वरोपासना को सिद्ध करने के लिए सम्पूर्ण सामर्थ्य लगा देता था। केवल रात्रि में सोते समय विवशता से उपासना छोड़नी पड़ती थी और प्रात:काल उठते ही पुन: ईश्वरोपासना आरम्भ कर देता था। इन दिनों प्राय: मैं मौन रहता था और विशेष परिचित व्यक्तिओं से बहुत आवश्यकता होने पर अल्प मात्रा में बात करता था। अधिक बात करनें से ईश्वरोपासना में बाधा होती थी। इस अवस्था को देखकर प्राय: लोगों ने मुझे पागल मान लिया था।

सत्यार्थ-प्रकाश ग्रन्थ की प्राप्ति : विवेक-वैराग्य-प्राप्ति के पश्चात् लगभग डेढ़ वर्ष में मुझे स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी द्वारा लिखित 'सत्यार्थ-प्रकाश' ग्रन्थ उपलब्ध हुआ। उस समय मुझे भाषा का अल्प ज्ञान था। जब कोई बात समझ में नहीं आती थी तो दूसरों से समझने का प्रयत्न करता था। सत्यार्थप्रकाश पढ़ने से मुझे ऐसा आभास होता था कि सत्यार्थ प्रकाश के लेखक ईश्वरोपासक और महापुरुष हैं। इसमें जो बातें लिखी हैं वे सत्य ही प्रतीत होती हैं।

भाषा के विशेष-ज्ञान की इच्छा : कालान्तर में विवेक वैराग्य के कुछ दृढ़ होने पर मन में एक विचार आया कि

ईश्वरोपासना से मुझे जो ज्ञान और आनन्द प्राप्त हुआ है, उसको समस्त संसार के लोगों तक पहुँचाया जाए। जब मैंने अपने विचारों को अन्य लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया तो अनेक बाधायें उपस्थित हो गई। भाषा का ज्ञान न्यून होने से मैं अपनी बात ठीक प्रकार से नहीं बता पाता था। मैंने विचार किया कि इन बाधाओं को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए ? बहुत विचार करने के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि मुझे भाषा का 'विशेष ज्ञान' प्राप्त करना चाहिए। भाषा का विशेष ज्ञान होने पर ही मैं संसार का अधिक उपकार कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं। 'विद्वान् बनने के लिए क्या पढ़ना चाहिए और कैसे पढ़ना चाहिए' इस विषय में मैंने सत्यार्थ-प्रकाश के तीसरे समुल्लास में पढा था। जो पाठ्यक्रम सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा था उसी के अनुसार पढ़ने के लिए मैं उपायों को ढूंढने लगा। अनेक गुरुकुलों में भी जाकर देखा कि वहाँ पर क्या-क्या कार्यक्रम होते हैं।

गुरुकुल में जाने से पूर्व एक बार मैं हरिद्वार चला गया। वहाँ पर मन्दिरों में ईश्वरोपासना के स्थान पर मूर्तियों की उपासना करते-करवाते हुए बहुत से लोगों को देखा। वहाँ पर यह भी देखा कि अनेक भोले-भाले लोगों को ईश्वर की पूजा के नाम पर ठगा जा रहा है। वास्तविक ईश्वरोपासना को छोड़कर मूर्तियों की उपासना करने और करवाने वालों को देखकर मन में एक विचार उत्पन्न हुआ कि यह अत्यन्त हानिकारक कार्य हैं, इसको दूर कैसे किया जाए ? इस विचार का उत्तर मिला कि प्रथम वेद के अङ्गोपाङ्गादि को पढ़कर विद्वान् बनना चाहिए। इसके पश्चात् ही इस

हानिकारक उपासना का निवारण और सत्य ईश्वरोपासना की स्थापना की जा सकती है अन्यथा नहीं ।

नाम परिवर्तन और ब्रह्मचर्य का व्रत : इसके पश्चात् श्री सुखदेवजी शास्त्री, ग्राम-आसन, जिला-सोनीपत निवासी से मेरा सम्बन्ध हुआ । शास्त्रीजी हमारे ग्राम फरमाना में अध्यापक थे । इन्होंने मेरे पूर्व नाम 'मुन्शी' को हटाकर 'मनुदेव' रख दिया । शास्त्रीजी ने वैदिक-धर्म के जानने में मुझे सहायता दी । कुछ संस्कृत-भाषा पढ़ाई । 'अष्टाध्यायी' के कुछ सूत्र भी स्मरण करवाए । विद्याध्ययनार्थ गुरुकुल झज्जर भेजने में भी श्री शास्त्रीजी ने मेरी सहायता की । अत: मैं शास्त्रीजी का बहुत उपकार मानता हूँ ।

विवेक वैराग्य उत्पन्न होने से पूर्व मैं पांच इन्द्रियों के विषयों को भोगना ही मानव-जीवन का मुख्य लक्ष्य मानता था । परन्तु वैराग्य के पश्चात् सांसारिक भोगों को नितान्त त्याज्य और ईश्वर साक्षात्कार को मानव जीवन का चरम लक्ष्य मानने लगा । वैराग्य के पश्चात् मेरे जीवन में महान् परिवर्तन आया । उसका परिणाम यह हुआ कि मैंने लगभग २१ इक्कीस वर्ष की अवस्था में आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का व्रत लिया ।

गृह-त्याग : ग्रामीण ढंग की हमारी गाने बजाने वालों की एक मण्डली थी । उसमें अनेक लोग थे । उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—श्री दीपचन्दजी, श्री माँगेरामजी, श्री फूलसिंहजी । श्री दीपचन्दजी और श्री माँगेरामजी ने वैराग्य की मेरी कुछ बातों को समझा और प्रयत्न किया कि वे भी इस मार्ग पर चलें । किन्तु अनेक बाधाओं के कारण वे योगमार्ग पर न चल सके । मैंने कई प्रकार के

ग्रामीण ढंग के बाजे सीखे थे। परन्तु मुख्यरूपेण बाँसुरी का विशेष अभ्यास किया था। वैराग्य के पश्चात् मैंने बाँसुरी बजाना छोड़ दिया और गृह-ग्राम को भी छोड़ दिया।

तत्पश्चात् विद्याध्ययन के लिए 'दयानन्द मठ' रोहतक (हरयाणा) चला गया। उस समय स्वामी सुरेन्द्रानन्दजी महाराज और स्वामी सोमानन्दजी महाराज मठ में व्यवस्था करते थे। इन दोनों महानुभावों से विद्या-धर्म की प्रवृद्धि में बहुत सहायता मिली। अतः मैं इनका उपकार मानता हूँ। दयानन्द-मठ में रहते हुए मैंने नगर से भिक्षा लाने का कार्य भी किया और अभ्यास करते-करते भिक्षा लाने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं रहा। इन्हीं दिनों यहाँ पर 'स्वामी अग्निदेव भीष्म' जी भी पढ़ते थे और उस समय इनका नाम 'सहदेव' था। ग्राम टिटोली में ये पशुओं को चराते थे। मैंने इन्हें पढ़ने की प्रेरणा दी थी। पुनः स्वामीजी दयानन्द मठ में पढ़ने के लिए आए थे।

गुरुकुल में अध्ययन : अष्टाध्यायी आदि पढ़कर विद्वान् बनकर संसार का उपकार करने की जो मेरी तीव्र इच्छा थी वह अभी तक पूर्ण नहीं हो पाई थी, अतः जहाँ पर अष्टाध्यायी आदि ग्रन्थ पढ़ाए जाते हों ऐसे गुरुकुल की गवेषणा करनीं प्रारम्भ की। अनेक स्थलों पर भ्रमण किया परन्तु मेरे अध्ययन की व्यवस्था न हो पाई। एक बार मैं 'दयानन्द वेद विद्यालय' गौतमनगर दिल्ली में प्रविष्ट होने के लिए गया। उस समय इस विद्यालय का संचालन 'स्वामी सच्चिदानन्दजी' करते थे। उन्होंने मुझे छात्राध्यक्ष के रूप में रहने की अनुमति दी, विद्यार्थी के रूप में नहीं।

मैंने इस वेद विद्यालय में ही रहकर अष्टाध्यायी आदि

पढ़ने का विचार किया। श्री सुखदेवजी शास्त्री को भी मैंने यह विचार बतलाया। श्री शास्त्रीजी ने कहा कि इस कार्य के लिए गुरुकुल झज्जर बहुत उत्तम स्थान है। इनके कहने से मैंने अपने विचार परिवर्तित कर दिए और मैं अध्ययनार्थ गुरुकुल झज्जर चला गया। श्री स्वामी ओमानन्द सरस्वतीजी (भूतपूर्व नाम श्री आचार्य भगवान् देवजी) गुरुकुल के आचार्य थे। उन्होंने मुझे गुरुकुल में प्रविष्ट कर लिया। इस समय मेरी अवस्था लगभग २२ बाईस वर्ष की थी। इस गुरुकुल में रहकर मैंने संस्कृत-भाषा, व्याकरण महाभाष्य, दर्शन, उपनिषद् तथा वेदादि ग्रंथो का अध्ययन किया और यहाँ की 'व्याकरणाचार्य', 'दर्शनाचार्य', 'वेद वाचस्पति' आदि उपाधियाँ भी प्राप्त कीं। इस सारे विद्याध्ययन में श्री स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती महाराजजी की महती कृपा रही। अतः मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

यहाँ श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजकजी से सांख्य-दर्शन एवं श्री आचार्य सुदर्शन देवजी से अनेक दर्शन तथा व्याकरण का बहुत सा भाग पढ़ा। 'श्री आचार्य राजवीरजी, श्री आचार्य महावीरजी मीमांसक, श्री वेदव्रतजी शास्त्री' इन सभी महानुभावों से भी विद्याध्ययन में बहुत सहायता मिली। श्री भानारामजी आर्य (ग्राम-टिटोली, जि० रोहतक, हरियाणा) ने मेरी आर्थिक सहायता की। इन सभी महानुभावों का और अन्य जो भी सज्जन मेरा सहयोग करते रहे उनका मैं महान् उपकार मानता हूँ।

मैं गुरुकुल झज्जर में लगभग पौने बारह वर्ष पर्यन्त पढ़ता और पढ़ाता रहा। इतने लम्बे काल में मेरी जितनी उन्नति होनी चाहिये थी उतनी नहीं हो पाई। इसमें मुख्य कारण

समय और साधनों का अभाव रहा। प्रारम्भ में अध्ययनार्थ मुझे लगभग ढाई-तीन घण्टे ही मिलते थे। यदि मुझे उचित समय और साधन उपलब्ध होते तो मैं महती उन्नति कर लेता। अत्यन्त कठिनाइयों के रहते हुए भी मैंने ईश्वरोपासना के बल पर धैर्यपूर्वक विचलित न होकर सब कार्यों का सम्पादन किया। इस सम्पूर्ण अध्ययन और अध्यापन काल में मैं ईश्वर साक्षात्कार को ही मुख्य मानकर सब कार्य करता था।

विवेक वैराग्य के पश्चात् गुरुकुल में आने से पूर्व मैं यम-नियमादि का पालन यथाशक्ति करता था और गुरुकुल में आने पर अन्यों को भी यम नियमों पर चलाने का प्रयास करता था। योग मार्ग को अपनाने के पश्चात् न कभी मैंने अपने असत्य से सन्धि की और न कभी अन्यों के असत्य से। इसका कारण यह है कि मैंने सत्य को सर्वोपरि मानकर उस पर चलने का पूर्ण प्रयास किया है और सत्य पर चलने से मुझे महान् लाभ हुआ है। जब से मैंने अध्ययन प्रारम्भ किया है तभी से वैदिक विद्वान् और नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के निर्माण करने की तीव्र इच्छा रही है। इस कार्य के लिये मैंने यथाशक्ति प्रयत्न भी किया और उसमें कुछ सफलता भी मिली।

जब मैं गुरुकुल झज्जर में अध्ययन और अध्यापन कर रहा था तब एक सूचना प्रकाशित हुई कि अजमेर में मीमांसा-दर्शन का अध्यापन श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसकजी कर रहे हैं वा करेंगे। यहाँ गुरुकुल झज्जर मैं मैंने 'सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, वेदान्त' ये पाँच दर्शन पढ़े थे और मीमांसादर्शन पढ़ने की मेरी तीव्र इच्छा थी। अतः मैं गुरुकुल

झज्जर को छोड़कर अजमेर चला गया ।

मैं जिस समय अजमेर पहुँचा उस समय श्री ब्रह्मचारी वेदव्रतजी (वर्तमान मैं श्री वेदव्रत मीमांसक, आचार्य, आर्षगुरुकुल वडलूर, कामारेड्डी गंज, जि० निजामाबाद, आन्ध्रप्रदेश) वहाँ पर श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसकजी से मीमांसा दर्शन पढ़ रहे थे । वहीं पर इनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ । सामान्य परिचय गुरुकुल झज्जर में हो चुका था । हम दोंनो ने श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसकजी से 'कात्यायन-श्रौत-सूत्र' के लगभग साढ़े तीन अध्याय पढ़े और सम्पूर्ण मीमांसा-दर्शन (शाबर भाष्य सहित) पढ़ा और साथ-साथ कुछ वैदिक धर्म का प्रचार भी करते रहे । मीमांसा दर्शन के अध्ययन काल में हमारे पास साधनों की बहुत न्यूनता रही, पुनरपि हम दोनों ने मिलकर शाबर-भाष्य सहित सम्पूर्ण मीमांसादर्शन का छः बार विचार किया ।

श्री ब्र० वेदव्रतजी ने मुझसे कहा कि मैं आपसे योग के विषय में जानना चाहता हूं । मैंने योग के विषय में यथाशक्ति बताने का प्रयास क्रिया और इन्होंने श्रद्धापूर्वक सुना और उस पर विचार भी किया । वैदिक-धर्म के विषय में भी मैंने इनको यथाशक्ति बतलाने का प्रयास किया । मीमांसा-दर्शन के पश्चात् हम दोनों ने दिल्ली में श्री स्वामी समर्पणानन्दजी से 'शतपथ ब्राह्मण' का लगभग पौन काण्ड पढ़ा ।

संन्यास-दीक्षा का ग्रहण : इसके पश्चात् मैं और श्री ब्र० वेदव्रत मीमांसकजी गुरुकुल सिंहपुरा, सुन्दरपुर, जि० रोहतक (हरियाणा) में रहने लगे । मैंने यहाँ पर लगभग १३ तेरह वर्ष पर्यन्त निवास किया । इसी गुरुकुल में रहते

हुए मैंने श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजकजी से संन्यास की दीक्षा चैत्र सुदी प्रतिपदा संवत् २०२७ वि० (तदनुसार ७ अप्रैल मंगलवार ई० सन् १९७०) को ली। इस दीक्षाग्रहण के समय मैंने अपने पूर्व नाम 'मनुदेव' के स्थान पर 'सत्यपति' रख लिया। संन्यास दीक्षा ग्रहण से पूर्व लगभग पच्चीस वर्ष तक 'जूते न पहनना, खाट पर न बैठना, दिन में न सोना' इत्यादि ब्रह्मचर्य सम्बन्धी नियमों का श्रद्धापूर्वक पालन करता रहा।

अध्यापन तथा धर्म प्रचार : इस गुरुकुल सिंहपुरा में रहते हुए स्वतन्त्र रूप से ब्रह्मचारियों को दर्शनादि ग्रन्थ पढ़ाता रहा और साथ-साथ वैदिक धर्म का प्रचार भी करता रहा। इन सब कार्यों को करते हुए भी मैं ईश्वरोपासना श्रद्धापूर्वक अधिक समय लगाकर करता रहा। मैं सदा योगाभ्यास को मुख्य मानकर चलता था और दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देता था। कई वर्ष पूर्व मौरीशस देश में आर्य महासम्मेलन हुआ था। उस समय वैदिक धर्म के प्रचार की दृष्टि से मैं और श्री ब्र० वेदव्रत मीमांसकजी भी गये थे। वहां रहकर प्रचार करने की योजना भी बनाई। किन्तु अनेक बाधकों के कारण हम वहाँ पर न रह सके।

अध्यापन और वैदिक धर्म के प्रचार में श्री महाशय हरद्वारी लालजी, श्री राममेहरजी एडवोकेट, सिंहपुरा ग्राम के प्रधान श्री रघुवीर सिंहजी, श्री दरयाव सिंहजी और गुरुकुल के अन्य अधिकारी लोग सहायता देते रहे। अतः मैं इनका धन्यवाद करता हूँ।

गुरुकुल सिंहपुरा के पश्चात् दिल्ली को केन्द्र बनाकर वि० संवत् २०४२ (मार्च १९८६ ई०) तक देश के विभिन्न

प्रान्तों में भ्रमण करके वैदिक-धर्म का प्रचार करता रहा। इस प्रचार काल में विशेष रूप से योग प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से धार्मिक जिज्ञासु-जनों को आध्यात्मिक मार्ग पर प्रेरित करता रहा। नवयुवकों और प्रौढ़ों को दर्शन आदि पढ़ाता रहा। 'वैदिक साधन आश्रम तपोवन' देहरादून (उत्तर-प्रदेश) में अनेक वर्षों तक ग्रीष्म काल में 'योग प्रशिक्षण शिविर' आयोजित किये। तथा दर्शनों एवं उपनिषदों का अध्यापन भी किया। इन सब उत्तम कार्यों में श्री महात्मा दयानन्दजी वानप्रस्थ और अन्य अधिकारी महानुभावों ने बहुत सहयोग दिया। इससे विद्या धर्म की प्रवृद्धि करने में बहुत सहायता मिली। श्री महात्मा दयानन्दजी वानप्रस्थ और आश्रम के अन्य अधिकारी महानुभावों के प्रेम और श्रद्धा के कारण मेरा आकर्षण तपोवन आश्रम की ओर दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ता गया और मैं आश्रम में अधिक से अधिक समय लगाने लगा।

श्री दीपचन्दजी आर्य, (प्रधान—'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट', २ एफ, कमलानगर दिल्ली-७) से लम्बे काल तक विशेष सम्बन्ध रहा। श्री दीपचन्दजी आर्य ने आर्ष साहित्य का प्रचार प्रर्याप्त मात्रा में किया। वेद और ऋषियों के प्रति उनकी बहुत श्रद्धा थी। मैं आर्ष साहित्य के पढ़ने-पढ़ाने वाले ब्रह्मचारियों के निर्माण में अधिक समय लगाता था और श्री दीपचन्दजी आर्य आर्ष साहित्य के प्रकाशन और प्रचार में अधिक समय लगाते थे। उद्देश्य के एक होने से हम दोनों लम्बे काल तक विद्या-धर्म के कार्यों को मिलकर करते रहे। इसी प्रकार श्री श्यामसुन्दरजी आर्य (संस्थापक—नेमवती धर्मार्थ ट्रस्ट, ६९ ई, कमलानगर

दिल्ली-७) के साथ विशेष सम्बन्ध रहा । श्री श्यामसुन्दरजी आर्य के जीवन में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार करने का विशेष उत्साह देखा । इन्होंने ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि के अनुसार पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों को लम्बे काल तक आर्थिक सहायता दी और अब भी दे रहे हैं ।

कुछ वर्ष पूर्व मैंने एक 'वेदधर्मरक्षा कोश' की स्थापना की थी । इस कोश के बनाने का उद्देश्य है स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि से पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों को आर्थिक सहयोग देकर वैदिक विद्वान् और विदुषी बनाना और वैदिक धर्म का विश्व में प्रचार-प्रसार करना । कोश में सहायता देने वाले अनेक पुरुष और मातायें हैं ।

ईश्वरोपासना का परिणाम : दर्शनाध्यापन और वैदिकधर्म का प्रचार करते हुए मैं ईश्वरोपासना में नियमपूर्वक प्रतिदिन तीन घण्टे लगाता था । इस ईश्वरोपासना का सुपरिणाम यह हुआ कि योग के क्षेत्र में अधिकाधिक दृढ़ता आती गई और भौतिकवाद की चकाचौंध मुझे सांसारिक विषयों की ओर आकृष्ट न कर सकी ।

एक बार मुझसे एक व्यक्ति ने पूछा कि आपने इस योग मार्ग को अपनाकर क्या खोया और क्या पाया ? मैंने इसका उत्तर दिया— कि 'योग-मार्ग पर चलकर मैंने वह उपलब्धि की है जो बड़े से बड़े शक्तिशाली भौतिकवादी देश नहीं कर सके, कुछ खोने का तो प्रश्न ही नहीं हैं ।' वह उपलब्धि है—'ईश्वर की उपासना से समस्त दुःखों की निवृत्ति और नित्य आनन्द की प्राप्ति । जिसको केवल भौतिकवादी व्यक्ति

कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता ।'

दर्शन एवं योगशिक्षण की विशिष्ट योजना : कुछ वर्ष पूर्व मैंने विचार किया कि इस शरीर का कोई विश्वास नहीं है । पता नहीं यह कब समाप्त हो जाए । अतः मेरे पास जो भी कोई विशेष गुण है वह शीघ्र ही अन्यों को दे दूं, जिससे संसार का उपकार हो । इसके लिये मैंने एक योजना बनाई । उस योजना के मुख्य प्रयोजन इस प्रकार रखे — (१) ऋषियों की मान्यताओं के अनुसार सभी वैदिक-दर्शनों के विद्वानों का निर्माण करना । (२) क्रियात्मक वैदिक-योग का सूक्ष्म रूप से प्रशिक्षण देकर वैदिक योगियों का निर्माण करना । (३) वैदिक सिद्धान्तों के ज्ञाता और यम-नियमादि को सर्वदा सर्वथा व्यवहार में उतारने वाले और दूसरों को वास्तविक मार्ग पर चलाने वाले व्यक्तियों का निर्माण करना । (४) तीनों एषणाओं से ऊपर उठकर निष्काम भाव से तन, मन, धन को विश्व-कल्याण के लिये समर्पित करने वाले व्यक्तियों का निर्माण करना ।

चैत्र शु० १ प्रतिपदा सं० २०४३ वि० (१० अप्रैल १९८६ ई०) से यहाँ 'आर्य वन विकास फार्म ट्रस्ट रोजड़' पत्रा० सागपुर, जि० साबरकांठा (गुजरात) में पठित, युवक, वैराग्य की भावना रखने वाले, आजीवन ब्रह्मचर्यव्रतियों को छः दर्शनों का अध्यापन और वैदिक योग का प्रशिक्षणादि करने हेतु स्थित हूं । आर्यवन विकास फार्म के प्रधान श्री धनजी भाई, उपप्रधान श्री अर्जुन भाई तथा अन्य अधिकारी महानुभावों के उत्तम प्रबन्ध से; श्री पं० कमलेश कुमारजी आर्य 'अग्निहोत्री' के पुरुषार्थ से तथा भारत के अनेक स्थानों से प्राप्त अनेक सज्जनों के सहयोग से इस विश्व-कल्याण

के कार्य में पर्याप्त सफलता मिली है । ये ब्रह्मचारी निष्काम भावना से देश विदेश में वेदविद्या और वैदिक-धर्म का प्रचार करेंगे तथा योग प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से वास्तविक वैदिक योग का परिज्ञान करायेंगे, ऐसी आशा है । इस दो वर्ष की योजना के पश्चात् चलने वाली इसी प्रकार की तीन वर्ष की योजना बनाई गई है ।*

कृतज्ञता : वैराग्य प्राप्ति से लेकर अब तक लगभग साढ़े चालीस वर्षों में मुझे जीवन के अनेक क्षेत्रों में जितनी सफलता मिली है, उसमें सबसे अधिक सहयोग ईश्वर से उपलब्ध हुआ है । इसके पश्चात् ऋषिकृत ग्रन्थों से तथा आर्य-समाज और आर्यसमाज के अनेक विद्वानों से विद्याध्ययनादि के रूप में मुझे पर्याप्त सहायता मिली । यदि मेरा सम्पर्क आर्यसमाज से न हुआ होता तो मेरी जितनी उन्नति हुई है, वह न हो पाती । इसलिये जिन-जिन महानुभावों ने जिस किसी प्रकार से सहायता की है, उन सबका मैं महान् उपकार मानता हूं ।

लक्ष्य तथा मन्तव्य : विवेक वैराग्य की प्राप्ति से पूर्व मैं सांसारिक विषय भोगों को ही मानव जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य मानता था । परन्तु अब मैं ईश्वर साक्षात्कार करना-करवाना ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य मानता हूँ ।

---

* १९८६ से १९९१ तक महाविद्यालय के दो सत्रों में देश भर के १० प्रान्तों के लगभग २१ ब्रह्मचारियों ने दर्शनों, उपनिषदों तथा आंशिक रूप से वेदों का अध्ययन किया तथा क्रियात्मक योग पशिक्षण प्राप्त किया । वर्तमान में ये ब्रह्मचारी देश के विभिन्न प्रान्तों में संस्कृत, व्याकरण वदर्शनों के अध्ययन-अध्यापन वैदिक धर्म प्रचार तथा योग प्रशिक्षण के कार्यों में संलग्न हैं । तृतीय सत्र (१९९१ से १९९४) में १० ब्रह्मचारी भाग ले रहे हैं ।

क्योंकि ईश्वर-साक्षात्कार किये बिना सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति और दुःखरहित पूर्णानन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

वैदिक-वाङ्मय के साथ-साथ अनेक सम्प्रदायों के ग्रन्थों तथा पाश्चात्य दार्शनिक विद्वानों के विचारों का संक्षिप्त रूप से जितना भी अध्ययन-मनन किया, उन सबका निष्पक्षभाव व तुलनात्मक-दृष्टि से परीक्षण करके मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मानवजीवन की पूर्ण सफलता के लिये जैसे साधन 'ऋग्, यजुः, साम, अथर्व' इन चारों वेदों और वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, वैसे अन्यत्र कहीं पर भी देखने को नहीं मिलते ।

लम्बे काल के अध्ययन और अध्यापन के पश्चात् मैंने यह अनुभव किया कि जिस 'वैदिक-योग' का वर्णन योगदर्शन आदि वैदिक ग्रन्थों में किया है वही ईश्वर साक्षात्कार तथा मोक्षप्राप्ति का वास्तविक उपाय है । इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है । वेद और वेदानुकूल ग्रन्थों में वर्णित योग-विषय का ही मैंने विशेष रूप से अध्ययन-अध्यापन किया और तदनुसार उसको जीवन में उतारने के लिये महान् पुरुषार्थ भी किया । विद्या, तप, श्रद्धा, ब्रह्मचर्यादि यम-नियमपूर्वक योगाभ्यास करने से मुझे अत्युत्तम फल की प्राप्ति हुई ।

हठयोग के परिज्ञानार्थ मैंने 'हठयोग प्रदीपिका' नामक पुस्तक का अध्ययन किया । उसमें अनेक बातें वैदिक-योग से सर्वथा विपरीत मिलीं । उन पर चलने से व्यक्ति आचारहीन बन जाता है और ऐसा आचारहीन व्यक्ति ईश्वर का साक्षात्कार कभी नहीं कर सकता । इसीलिये योग के नाम से प्रचलित

ऐसी अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाओं को देखकर उनके निवारणार्थ तथा वास्तविक योग का स्वरूप बतलाने हेतु सर्वहितार्थ 'योगमीमांसा' नामक पुस्तक लिखी ।

मेरा मन्तव्य वही है जिसका सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक आदि लक्षण वाले ईश्वर ने वेदों में वर्णन किया है और जो स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने स्वनिर्मित 'सत्यार्थप्रकाश' आदि ग्रन्थों मे लिखा है । इससे भिन्न मेरा कोई नवीन मन्तव्य नहीं है । मैं यही चाहता हूँ कि सम्पूर्ण संसार में ईश्वरोक्त वेदविद्या और वैदिकधर्म का प्रचार-प्रसार हो । 'मैं जीवन-पर्यन्त ईश्वर प्रदत्त ज्ञानबलादि से यथाशक्ति सत्यविद्या और वैदिक-धर्म का प्रचार-प्रसार करता रहूँगा और अन्यों को भी वैदिक मार्ग पर चलाने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा' ऐसा मेरा दृढ निश्चय है ।

— सत्यपति परिव्राजक

२०४४ वि० चैत्र कृ० १४
ता० १७-३-१९८८
आर्यवन विकास फार्म, रोजड,
डा.-सागपुर, जि०-साबरकांठा (गुजरात)